दैनिक भास्कर

Date: 05-08-25

आखिर किसकी इकोनॉमी नीचे की ओर जा रही है?

संपादकीय

ट्रम्प ने भारत और रूस की इकोनॉमी को मृतप्राय बता दिया । क्या अमेरिकी राष्ट्रपति ने इतना बड़ा बयान देने के पहले तथ्य देखे और क्या स्वयं अमेरिकी अर्थव्यवस्था के तुलनात्मक आंकड़े परखे ? अर्थव्यवस्था की मजबूती जीडीपी के आयतन और काल-विशेष में उसकी वार्षिक विकास दर से आंकी जाती है। जीडीपी का बंटवारा समाज में उचित ढंग से होना सम्यक विकास का सूचक होता है। दुनिया में अगर कोई एक अर्थव्यवस्था पिछले कुछ वर्षों में सबसे ज्यादा तेजी से बढ़ रही है तो वह है भारत की जीडीपी का आयतन भी कई वर्षों में अन्य देशों के मुकाबले तेजी से बढ़ता हुआ भारत को तीसरे और चौथे स्थान तक पहुंचा चुका है। अगर अ की जीडीपी पिछले 30 वर्षों में मात्र चार गुना बढ़ी तो यह भारत, रूस और चीन का क्रमशः 11.6, 6.2 और 26.1 गुना रहा है। तो नीचे कौन जा रहा है? इसे दूसरे रूप में देखें तो अमेरिकी जीडीपी के प्रतिशत के रूप में जहां भारत की जीडीपी 30 साल पहले मात्र 4.7% थी, वहीं वह आज 13.7% है। इसी काल में रूस का प्रतिशत 4.7 था, जो आज 6.8 है। चीन की जीडीपी तो 30 साल पहले अमेरिकी जीडीपी की 9.7 प्रतिशत थी, जो आज 63 फीसदी है। कोई ताज्जुब नहीं कि अगर अमेरिकी अर्थव्यवस्था इसी तरह सुस्त रही तो चीन जल्द ही दुनिया की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन जाए।

Date: 05-08-25

सरकारी खजानों में सेंध लगा रही है लोकलुभावन राजनीति

आरती जेरथ, (राजनीतिक टिप्पणीकार)

नीतीश कुमार ने हर महीने 125 यूनिट मुफ्त बिजली देने की एक और चुनाव पूर्व लुभावनी घोषणा करके बिहार के राजनीतिक गलियारों में सुगबुगाहटें पैदा कर दी हैं। जो नीतीश 2015 के दिल्ली चुनाव में खुले तौर पर ठीक ऐसी ही घोषणा के लिए अरविंद केजरीवाल की आलोचना कर चुके हैं, अब उन्हीं के द्वारा ऐसा ऐलान बताता है कि चुनाव के वक्त पॉपुलिस्ट घोषणाओं के प्रति नेताओं का आकर्षण कितना बढ़ता जा रहा है। देखें तो चुनाव जीतने की अंधी दौड़ में सभी दल इसके आगे झुकते जा रहे हैं। चाहे महिलाओं को लुभाने के लिए उनके खातों में हर माह पैसा देने की बात हो या सरकारी नौकरियों का वादा, नेताओं को लग रहा है राज्यसत्ता उनकी निजी कंपनी है। समग्र विकास और वित्तीय अनुशासन को ताक पर रखकर मुफ्त रेवड़ियां बांटने की सीमाएं तोड़ दी गई हैं। यह प्रवृत्ति चुनावी तंत्र को तार-तार कर रही है और देश भर के राज्यों के खर्च पर भारी-भरकम बोझ डाल रही है।

गौर करें कि बिहार में चुनाव से कुछ ही माह पहले नीतीश ने जल्दबाजी में कितनी घोषणाएं कर डाली हैं बिहार की मूल निवासी महिलाओं को सरकारी नौकरियों में 33% आरक्षण, वरिष्ठ नागरिकों और दिव्यांगों की सामाजिक सुरक्षा पेंशन में तीन गुना बढ़ोतरी, एक करोड़ रोजगारों का सृजन, विद्यार्थियों को हर माह 4 से 6 हजार रुपए तक का स्टाइपेंड, महिलाओं को फ्री बस यात्रा और गरीबों को मुफ्त में आवास। इनमें से कई योजनाएं लागू हो चुकी हैं, इसलिए वोटरों को इनका फायदा और इसका बोझ तत्काल दिखने लगेंगे।

मसलन, चुनाव आने तक परिवारों को बिजली उपभोग के 'शून्य' भुगतान वाले तीन बिल मिल चुके होंगे। सामाजिक सुरक्षा पेंशन में बढ़ोतरी से राज्य के खजाने पर इस साल 9000 करोड़ रु. का अतिरिक्त बोझ आने का अनुमान है। बसों में मुफ्त यात्रा से राजस्व नुकसान का अहसास धीरे-धीरे होगा। कर्नाटक में सत्ता में दो साल पूरा करने के बाद कांग्रेस सरकार को इसकी चुभन महसूस होने लगी है। विद्यार्थियों को स्टाइपेंड का हिसाब तो अभी किया ही नहीं।

बीते 20 वर्षों से बिहार की राजनीति में हावी नीतीश ने 'सुशासन' के लिए प्रतिष्ठा अर्जित की थी। हालांकि उन्होंने गरीबों के लिए कई कल्याणकारी योजनाएं शुरू की थीं, पर उनका रवैया एहतियात भरा रहा। उन्होंने अपनी योजनाओं को जरूरतमंदों तक सीमित रखा हैं, उद्देश्यहीन तरीके से सौगातें नहीं बांटीं। लेकिन वे मध्यप्रदेश से लेकर महाराष्ट्र और झारखंड तक सत्तारूढ़ सरकारों की हालिया चुनावों में हुई शानदार जीतों से बेखबर नहीं रह पाए। इन राज्यों में सत्तासीन दलों को निम्न आय वर्ग की महिलाओं के लिए सफल योजनाएं लागू करने के कारण खासे वोट मिले थे।

कल्याणकारी राजनीति और लोकलुभावनी सियासत में बहुत अंतर है। कल्याणकारी राजनीति का मकसद गरीबों को सहारा देना होता है। भारत जैसे देश में जहां अनुमानों के मुताबिक 20% आबादी गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करती है वहां सरकारों को लोगों की मदद के लिए आगे आना होगा। वे लोगों को बाजार की ताकतों के भरोसे नहीं छोड़ सकतीं। लेकिन दुर्भाग्य से ऐसा लगता है कि जमीनी हकीकत से राजनीतिक दलों का नाता टूट चुका है। उनके पास ऐसे कार्यकर्ता और संगठन नहीं बचे, जो उन्हें वास्तविक फीडबैक दे सकें।

दिसंबर, 2024 में आरबीआई ने राज्यों के बजट पर जारी अपनी रिपोर्ट में 'फ्रीबीज' और रियायतों पर होने वाले खर्च में तेजी से बढ़ोतरी पर चिंता जताई थी। इसमें राज्य सरकारों को उनके सब्सिडी खर्च को नियंत्रित करने और तर्कसंगत बनाने की सलाह दी गई थी, ताकि व्यापक महत्व की अधिक महत्वपूर्ण योजनाओं के लिए पैसा कम ना पड़ जाए।

यही कारण है कि आज महाराष्ट्र, कर्नाटक, झारखंड या बिहार- सभी जगहों पर सरकारें खर्चे में नियंत्रण के लिए लाभार्थियों की सूची में छंटनी करने में लगी हैं, ताकि राज्य की देनदारियों का बोझ बहुत ना बढ़ जाए। महाराष्ट्र सरकार भी चुनाव जिताने वाली 'लाडकी बहिण योजना से 26.34 लाख लाभार्थियों के नाम हटा चुकी है, क्योंकि वे अपात्र पाई गई थीं। झारखंड की 'मईयां सम्मान योजना' भी लड़खड़ा रही है और महिलाओं के खाते में पैसों का हस्तांतरण रुक-रुककर हो रहा है। कर्नाटक सरकार महिलाओं को मुफ्त बस यात्रा की योजना पर बढ़ते खर्च के कारण इस पर विचार कर रही है। दिल्ली सरकार अधिक राजस्व पाने के लिए जमीनों के दाम बढ़ाने के बारे में सोच रही है, ताकि चुनाव के समय पर किए गए वादे पूरे किए जा सकें। वेतनभोगी वर्ग भी नाराज है कि प्रतिस्पर्धी राजनीति में उन्हें कोई बिना लाभ दिए बिना पीछे धकेला जा रहा है।

Date: 05-08-25

आत्मसम्मान की कीमत पर अमेरिका से रिश्ते सम्भव नहीं

सैयद अता हसनैन, (लेफ्टिनेंट जनरल कश्मीर कोर के पूर्व कमांडर)

वॉशिंगटन में हवाओं के बदलते रुख से निपटना कभी आसान नहीं होता, खासतौर पर जब नेतृत्व की बागडोर ट्रम्प के हाथों में हो। भारत को लेकर ट्रम्प की भावनाओं में इधर एक नाटकीय बदलाव देखा जा रहा है, हालांकि यह न तो अप्रत्याशित है और न ही अभूतपूर्व भारत अमेरिका संबंधों का इतिहास ऐसे अनेक अवसरों से भरा रहा है। और इन सभी को जोड़ने वाला साझा सूत्र अपने राष्ट्रीय हितों और रणनीतिक गरिमा पर भारत का सदैव ही अडिग रहने वाला ध्यान है।

1990 के दशक की शुरुआत से ही भारत और अमेरिका की साझेदारी निरंतरता के साथ, लेकिन सावधानी से बढ़ी है। शीत युद्ध के बाद एकध्रुवीय विश्व की महाशक्ति के रूप में उभरे अमेरिका ने अपनी नजरें एशिया की ओर मोड़ ली थीं। लेकिन मैन्युफैक्चरिंग और आर्थिक क्षेत्र में एक दिग्गज के रूप में चीन के उदय ने वॉशिंगटन में खतरे की घंटी बजानी शुरू कर दी। इसकी तुलना में भारत में अमेरिका ने न केवल अपना एक लोकतांत्रिक समकक्ष देखा, बल्कि रणनीतिक भूगोल वाला एक विशाल राष्ट्र भी पाया, जिसकी सीमाएं चीन से लगी हुई थीं। वह हिंद महासागर क्षेत्र में भी प्रभाव रखता था। ये वही जलक्षेत्र है, जहां से चीन की ऊर्जा और व्यापार जीवन-रेखाएं गुजरती हैं।

लेकिन यह कभी भी बराबरी का रिश्ता नहीं रहा था। वर्षों तक अमेरिका भारत को लेन-देन के नजरिए से देखता रहा । सैन्य संबंध बढ़े, मालाबार जैसे संयुक्त अभ्यास नियमित हुए, तकनीक व खुफिया जानकारी के क्षेत्र में सहयोग का विस्तार हुआ। पर अमेरिका ने भारत और पाकिस्तान को एक ही नजरिए से देखने की अपनी आदत नहीं छोड़ी। यह झूठी तुलना खासकर कश्मीर में आतंकवाद के मुद्दे पर विवाद का विषय बनी रही है।

इसके बावजूद 2005 के परमाणु समझौते ने विश्वास के बढ़े हुए स्तर का संकेत दिया। ऐसा लगा कि अमेरिका भारत को चीन के विरुद्ध संतुलन बनाने वाले देश से कहीं बढ़कर एशिया में नियम-आधारित व्यवस्था को आकार देने वाले एक साझेदार के रूप में भी देखने लगा था। लेकिन ट्रम्प के उदय के साथ ही चीजें बदलीं । सौदेबाजी के लिए अधीर और कूटनीतिक तकाजों से अनभिज्ञ ट्रम्प को उम्मीद थी कि भारत सहित दुनिया के तमाम देश दबाव में उनके सामने झुक जाएंगे। उन्हें लगा कि भारत व्यापार, टैरिफ और कूटनीति के क्षेत्रों में वॉशिंगटन की इच्छाओं का पालन सिर्फ इसलिए करेगा क्योंकि एक व्यापक हिंद-प्रशांत गठबंधन मौजूद था। यह उनकी एक बड़ी गलतफहमी थी, क्योंकि भारत अमेरिका के साथ साझेदारी केवल तभी करेगा, जब उसकी शर्तें उसके अपने राष्ट्रीय हितों के विरुद्ध न हों और ट्रम्प को इसके प्रति अपेक्षित सम्मान दिखाना होगा।

क्वाड में भारत की स्पष्ट भूमिका और हिंद महासागर में उसके सहयोगी रुख के बावजूद ट्रम्प ने भारत पर आक्रामक दबाव बनाना शुरू कर दिया- व्यापार की शर्तों पर, बाजारों तक पहुंच पर और तकनीकी नीति पर हाल ही में ट्रम्प खेमे ने ऑपरेशन सिंदूर के इर्द-गिर्द एक कहानी गढ़ी कि उसमें अमेरिका द्वारा हस्तक्षेप किया गया था। भारत द्वारा तुरंत और दृढ़ता से खारिज किए गए इस दावे ने ट्रम्प को व्यक्तिगत रूप से आहत किया है। भारत ने स्पष्ट कर दिया है कि पाकिस्तान के साथ युद्धविराम का फैसला किसी बाहरी ताकत के दबाव पर नहीं लिया गया था। पाकिस्तान के सैन्य नेतृत्व के प्रति ट्रम्प की बढ़ती गर्मजोशी ने भारत-अमेरिका सम्बंधों में असहजता को बढ़ा दिया है। असीम मुनीर के साथ हाल ही में हुए हाई-प्रोफाइल लंच ने दिल्ली में सबको चौंकाया ।

भारत के लिए यह निराशाजनक भले हो, लेकिन अस्थिर करने वाला नहीं है। वह जानता है कि अमेरिकी विदेश नीति- खासकर ट्रम्प के शासनकाल में तात्कालिकता से प्रेरित है, दीर्घकालिक दृष्टिकोण से नहीं। वह यह भी जानता है कि भारत की ताकत है किसी एक शक्ति के साथ जुड़ने में नहीं, बल्कि निर्णय लेने की अपनी स्वायत्तता बनाए रखने में है। यह क्षण इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह इस पुरानी सच्चाई की पुष्टि करता है कि भारत पर दबाव नहीं डाला जाएगा। रणनीतिक साझेदारियां दबाव पर नहीं बनतीं; वे आपसी सम्मान पर टिकी होती हैं। भारत अमेरिका के साथ अपने संबंधों को महत्व देता रहेगा। वह रक्षा सहयोग, तकनीकी तालमेल और एक स्वतंत्र एवं खुले हिंद-प्रशांत क्षेत्र के लिए साझा दृष्टिकोण के महत्व को समझता है। लेकिन ये प्राथमिकताएं सम्प्रभु निर्णयों से समझौता करने या अंतरराष्ट्रीय नैरेटिव में गलतबयानी को स्वीकारने की कीमत पर नहीं हो सकतीं।

दैनिक जागरण

Date: 05-08-25

अवैध मतांतरण पर बने केंद्रीय कानून

प्रमोद भार्गव, (लेखक वरिष्ठ पत्रकार एवं राजनीतिक विश्लेषक हैं)

छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री विष्णु देव साय राज्य में मतांतरण की गंभीर होती समस्या से निपटने के लिए एक कड़ा कानून लाने की तैयारी कर रहे हैं। इस कानून के तहत, जो लोग अनुसूचित जनजाति (एसटी) से ईसाई या मुस्लिम मजहब में परिवर्तित हो चुके हैं, उन्हें सरकारी योजनाओं के लाभ से वंचित किया जाएगा। छत्तीसगढ़ में अवैध मतांतरण एक गंभीर समस्या बन चुकी है। इस नए कानून के लागू होने से अनुसूचित जाति (एससी) के लोगों की तरह अनुसूचित जनजाति के लोग भी सरकारी योजनाओं के लाभ से वंचित हो जाएंगे। वर्तमान में, ईसाई या मुस्लिम बने आदिवासी न केवल एसटी वर्ग का लाभ ले रहे हैं, बल्कि वे अल्पसंख्यक वर्ग की योजनाओं का भी लाभ उठा रहे हैं। प्रस्तावित विधेयक में बिना सूचना के मत परिवर्तन करने पर 10 वर्ष तक की सजा का प्रविधान किया गया है। यह कानून छत्तीसगढ़ धर्म स्वतंत्रता अधिनियम, 1968 की जगह लेगा ।

आदिवासी नेता बाबा कार्तिक उरांव ने हमेशा मतांतरित आदिवासियों को आरक्षण देने का विरोध किया था। उन्होंने 1967 में संसद में अनुसूचित जाति एवं जनजाति आदेश संशोधन विधेयक - 1967 पेश किया था। उस विधेयक पर संसद की संयुक्त समिति ने छानबीन की और 17 नवंबर, 1969 को अपनी सिफारिशें दी थीं। इनमें एक प्रमुख सिफारिश थी कि कोई भी आदिवासी व्यक्ति, जिसने जनजाति आदिवासी मत तथा विश्वासों का परित्याग कर दिया हो और ईसाई या इस्लाम पंथ ग्रहण कर लिया हो, वह अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं समझा जाएगा और न ही वह आदिवासियों को मिलने वाली सरकारी सुविधाओं का पात्र रह जाएगा। इसका अर्थ यह हैं कि मत परिवर्तन के बाद उस व्यक्ति को अनुसूचित जनजाति के अंतर्गत मिलने वाली सरकारी सुविधाओं से वंचित होना पड़ेगा। संयुक्त समिति की सिफारिश के बावजूद एक वर्ष तक उस विधेयक पर संसद में बहस नहीं हुई। कहा गया कि ईसाई मिशनरियों के दबाव में तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की सरकार ने उस विधेयक को ठंडे बस्ते में डाल दिया। तब कांग्रेस में रहते हुए अपने राजनीतिक भविष्य को दंव पर लगाकर बाबा कार्तिक उरांव ने 322 लोकसभा सदस्यों और 26 राज्यसभा सदस्यों के हस्ताक्षरों का एक पत्र इंदिरा गांधी को दिया था, जिसमें यह जोर देकर कहा गया था कि वे विधेयक की सिफारिशों को स्वीकार करें, क्योंकि यह तीन करोड़ वनवासियों के जीवन-मरण का प्रश्न है। अब आदिवासी बाहुल्य छत्तीसगढ़ की सरकार कार्तिक उरांव की इसी इच्छा को पूरा करने की तैयारी में है।

हाल में भाजपा सांसद निशिकांत दुबे और ढालसिंह बिसेन ने संसद में कहा था कि अनुसूचित जातियों और जनजातियों को प्रलोभन देकर मत परिवर्तन का चलन लगातार बढ़ रहा है। दरअसल मतांतरण के संबंध में संविधान के अनुच्छेद-342 में अनुच्छेद- 341 जैसे प्रविधान नहीं हैं। अनुच्छेद 341 में स्पष्ट कहा गया है कि अनुसूचित जाति के लोग यदि मत परिवर्तन करेंगे तो उनका आरक्षण समाप्त हो जाएगा इस कारण यह वर्ग मतांतरण से बचा हुआ है। जबकि अनुच्छेद 342 में संविधान निर्माताओं ने अनुसूचित जनजातियों के मत और पुरखों की पारंपरिक सांस्कृतिक आस्था को बनाए रखने के लिए व्यवस्था की है कि अनुसूचित जनजातियों को राज्यवार अधिसूचित किया जाएगा। यह आदेश राष्ट्रपति द्वारा राज्य की अनुशंसा पर दिया जाता है। इस आदेश के लागू होने पर उल्लिखित अनुसूचित जनजातियों के लिए संविधानसम्मत आरक्षण के अधिकार प्राप्त होते हैं। हालांकि इस आदेश में संशोधन का अधिकार संसद को प्राप्त है। अनुच्छेद 341 के अनुसार अनुसूचित जातियों के वही लोग आरक्षण के दायरे में हैं, जो भारतीय धर्म हिंदू, बौद्ध और सिख अपनाए हुए हैं। इस प्रकार यदि अनुच्छेद-342 में अनुच्छेद-341 जैसे प्रविधान हो जाते हैं, तो अनुसूचित जनजातियों में मतांतरण की समस्या पर अंकुश लग जाएगा।

संविधान के अनुच्छेद-15 के अनुसार पंथ, जाति, लिंग और जन्म स्थान के आधार पर राष्ट्र किसी भी नागरिक के साथ पक्षपात नहीं कर सकता। इस दृष्टि से संविधान में विरोधाभास भी हैं। संविधान के तीसरे अनुच्छेद, अनुसूचित जाति आदेश 1950 के अनुसार केवल हिंदू धर्म का पालन करने वालों के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति को अनुसूचित जाति की श्रेणी में नहीं माना जाएगा, जिसे प्रेसिडेंशियल आर्डर के नाम से भी जाना जाता है। इस परिप्रेक्ष्य में अन्य पंथ समुदाय के दलित और हिंदू दलितों के बीच एक स्पष्ट विभाजक रेखा है। पिछले 60 वर्षों से दलित ईसाई और दलित मुसलमान हिंदू अनुसूचित जातियों को दिए जाने वाले अधिकारों की मांग करते आ रहे हैं। रंगनाथ मिश्र की रिपोर्ट ने इसकी पैरवी भी की थी। हालांकि 2015 में सर्वोच्च न्यायालय ने एक फैसले में कहा था कि एक बार जब कोई व्यक्ति हिंदू धर्म छोड़कर ईसाई या इस्लाम मतावलंबी बन जाता है, तो हिंदू होने के चलते उसके सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक रूप से कमजोर होने की अयोग्यताएं समाप्त हो जाती हैं। लिहाजा उसे संरक्षण देना जरूरी नहीं है। इस हिसाब से उसे अनुसूचित जाति का व्यक्ति भी नहीं माना जाएगा। हिंदुओं का छल छद्म से मतांतरण रोकने के लिए इस तरह का कानून अब छत्तीसगढ़ में ही नहीं, बल्कि पूरे देश के लिए संसद के माध्यम से लाना अनिवार्य हो गया है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 05-08-25

समाधान प्रक्रिया

संपादकीय

सर्वोच्च न्यायालय के एक पीठ ने पिछले सप्ताह कहा, 'प्रथम दृष्ट्या, हमारा मत है कि विवादित निर्णय में उस विधिक स्थिति पर सही ढंग से विचार नहीं किया गया है, जिसे अनेक फैसलों द्वारा स्थापित किया गया है।' इस पीठ में भारत के मुख्य न्यायाधीश बीआर गवई और न्यायमूर्ति सतीश चंद्र शर्मा शामिल थे। यह 2 मई को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सुनाए गए फैसले के संदर्भ में है जिसमें उसने भूषण पावर ऐंड स्टील लिमिटेड (बीपीएसएल) की समाधान योजना को अवैध घोषित करते हुए उसका नकदीकरण करने का आदेश दिया था।

ऐसी घटनाएं सर्वोच्च न्यायालय में अक्सर नहीं होती हैं लेकिन इस असाधारण परिस्थिति में ऐसे ही असाधारण कदमों की जरूरत है। 2 मई के निर्णय ने काफी असहजता पैदा की है। यह असहजता न केवल प्रत्यक्ष अंशधारकों में है बल्कि नीतिगत हलकों में भी इसे महसूस किया जा रहा है। अगर राष्ट्रीय कंपनी लॉ पंचाट यानी एन-सीएलटी द्वारा मंजूर समाधान योजना को कुछ साल के बाद अवैध ठहराया जा सकता है और कॉरपोरेट देनदार को नकदीकरण करने को कहा जा सकता है तो यह ऋणशोधन अक्षमता एवं दिवालिया सहिता यानी आईबीसी की बुनियाद को प्रभावित करने वाला होगा। अर्थव्यवस्था को भी इसकी असाधारण रूप से ऊंची कीमत चुकानी होगी।

अभी इस मामले में अंतिम निर्णय नहीं आया है लेकिन अंशधारकों को इस बात से राहत मिलनी चाहिए कि न्यायमूर्ति गवई ने इस मामले के संदर्भ में जमीनी हकीकतों को समझा और इस तथ्य का भी जिक्र किया कि अधिग्रहण करने वाली कंपनी जेएसडब्ल्यू स्टील करीब 20,000 करोड़ रुपये का निवेश कर चुकी है। इतना ही नहीं हजारों नौकरियां भी दांव पर हैं। उन्होंने यह भी कहा कि ऋणदाता समूह की वाणिज्यिक समझदारी में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है, खासकर तब जबकि एनसीएलटी और राष्ट्रीय कंपनी लॉ अपीलीय पंचाट (एनसीएलएटी) ने इसे बरकरार रखा है। सर्वोच्च न्यायालय का हस्तक्षेप और 2 मई के निर्णय की समीक्षा सकारात्मक बातें हैं लेकिन यह भी महत्त्वपूर्ण होगा कि इस मामले को जल्द से जल्द निपटाया जा सके। निर्णव में कोई भी देरी कंपनी में निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करेगी और परिसंपत्ति मूल्यांकन प्रभावित हो सकता है। ध्यान रहे दिवालिया प्रक्रिया सबसे अधिक इसी से बचने की कोशिश करती है।

अब जबकि यह मामला न्यायालय में सुनवाई के लिए प्रस्तुत है, सरकार के लिए बेहतर यही होगा कि वह पिछले निर्णय की अनदेखी नहीं करे। ऐसे कई क्षेत्र हैं जहां सरकार को ध्यान देने और दिवालिया प्रक्रिया को मजबूत बनाने की जरूरत है। इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि समीक्षा के अधीन निर्णय हर स्तर पर प्रक्रिया पर सवाल उठाता है। सरकार को इसका सावधानीपूर्वक अध्ययन करना चाहिए और हालात दोहराए नहीं जाएं इसके लिए कमियों को दूर करना होगा। आईबीसी का क्रियान्वयन हाल के दशकों के सबसे बड़े सुधारों में से एक

माना जाता है। सरकार को इसे मजबूत करने के लिए हरदम तैयार रहना चाहिए। इसके अलावा एनसीएलटी और एनसीएलएटी की क्षमता के मसले को भी जल्द से जल्द हल करना जरूरी है। यह बात ध्यान देने लायक है कि एनसीएलटी का गठन कंपनी अधिनियम के प्रशासन के लिए किया गया था और उसे यह जिम्मेदारी दी गई थी कि वह दिवालिया मामलों को देखे। लेकिन इस दौरान उसकी क्षमता में कोई वृद्धि नहीं की गई।

जैसा कि इस समाचार पत्र में भी प्रकाशित किया गया था, संसद की वित्त मामलों की स्थायी समिति ने हाल ही में ऋणशोधन समाधान की गति बेहतर बनाने के लिए सिर्फ इसको समर्पित एन- सीएलटी और एनसीएलएटी की स्थापना की संभावना पर विचार किया। ऐसी सभी संभावनाओं पर विचार होना चाहिए। यह महत्त्वपूर्ण है कि निर्णय लेने वाले प्राधिकार के पास वांछित भूमिका निभाने की क्षमता भी हो। अभी जो हालात हैं, उनमें समाधान की प्रक्रिया में बहुत समय लग रहा है। भारतीय ऋणशोधन एवं दिवालिया बोर्ड के आंकड़े बताते हैं कि करीब 1,200 मामले जिनमें समाधान योजना सामने आई, उनमें औसतन 597 दिन का समय लगा है। नकदीकरण या परिसमापन के रूप में समाप्त होने वाले मामलों में भी 500 दिनों से अधिक का समय लगा। इस समय को कम करने की आवश्यकता है क्योंकि देरी से मूल्य कम हो सकता है। आखिर में यह महत्त्वपूर्ण है कि प्रक्रिया का अंत निश्चित किया जाए। हर बार जब कोई मामला सर्वोच्च न्यायालय जाता है तो इससे देरी बढ़ती है और प्रक्रिया बाधित होती है।

Date: 05-08-25

अमेरिकी शुल्क वृद्धि एक अस्थायी बाधा

सोनल वर्मा, (लेखिका नोमूरा की मुख्य अर्थशास्त्री हैं)

भारत से आयात पर अमेरिका द्वारा 25 फीसदी शुल्क की घोषणा, साथ ही रूस से ईंधन और सुरक्षा संबंधी खरीद को लेकर जुर्माने की बात, भारत- अमेरिका व्यापार संबंधों में एक निराशाजनक बदलाव का संकेत है। यह खासतौर पर कठोर प्रतीत होता है, क्योंकि भारत उन शुरुआती देशों में से एक है जिन्होंने अमेरिका के साथ बातचीत की शुरुआत की। बातचीत के उन्नत अवस्था में होने के बावजूद भारत को वियतनाम (20 फीसदी), इंडोनेशिया (19 फीसदी) और अन्य एशियाई प्रतिस्पर्धियों की तुलना में अधिक शुल्क का सामना करना पड़ रहा है। यह असमानता बातचीत की रणनीति और व्यापक भू-राजनीतिक गतिशीलता, दोनों पर सवाल उठाती है।

बहरहाल इस झटके को व्यापक दृष्टि से देखें तो घोषित शुल्क वृद्धि अस्थायी हो सकती है। यह एक स्थायी व्यवस्था के बजाय बातचीत के उपाय के रूप में सामने आ सकती है। अमेरिकी व्यापार प्रतिनिधि- मंडल अगस्त के अंत में भारत आने वाला है और इससे अंदाजा लगता है कि संवाद के रास्ते खुले हुए हैं और शुल्क दरों में

कमी की संभावना बरकरार है। हालांकि अन्य देशों के साथ अमेरिकी व्यापार समझौतों से यही संदेश निकलता है कि बेहतर से बेहतर हालात में भी 15 से 20 फीसदी की शुल्क दर बरकरार रहेगी।

बेहतर शुल्क दरों को लेकर बातचीत कामयाब नहीं होने की हमें अल्पकालिक आर्थिक कीमत चुकानी होगी लेकिन इसका आकलन दीर्घकालिक चुनौतियों के आधार पर किया जाना चाहिए। ये चुनौतियां अमेरिकी मांगों के प्रति सहमत होने से उभरेंगी। उदाहरण के लिए नीतिगत लचीलेपन की क्षति, मिसाल कायम करने वाली रियायतें और घरेलू राजनीतिक परिणाम अन्य देशों ने जहां जल्दी से मौखिक समझौते किए वहीं भारत ने अधिक विस्तृत प्रक्रिया को वरीयता दी ताकि व्यापक समझौता हो सके।

रूस से ईंधन और सैन्य खरीद पर जुर्माने की घोषणा ने जटिलता और बढ़ा दी है क्योंकि ऊर्जा और रक्षा खरीद में भारत की रणनीतिक स्वायत्तता व्यापार वार्ताओं में उलझ गई है भारत रूसी तेल आयात पर अपनी निर्भरता कम करने के लिए पश्चिम एशिया से आयात बढ़ा सकता है। वह इस क्षेत्र से एलएनजी आयात भी बढ़ा सकता है। हालांकि इसकी लागत अधिक होगी। हमें रूस के साथ रिश्तों का सावधानीपूर्वक प्रबंधन करना होगा और इस दौरान अमेरिका से संवाद कायम रखते हुए ऊर्जा सुरक्षा पर भी ध्यान देना होगा।

आर्थिक प्रभाव का आकलन

इन शुल्कों का आर्थिक प्रभाव उनकी अवधि और दायरे पर निर्भर करता है। इस मोर्चे पर जुर्माने की दर सहित काफी अनिश्चितता बनी हुई है। फिलहाल धारा 232 के अंतर्गत चल रही जांचों के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र जैसे कि औषधियां, सेमीकंडक्टर और इलेक्ट्रॉनिक्स, आदि जवाबी शुल्क से मुक्त हैं। इसका अर्थ यह है कि भारत की प्रभावी शुल्क दर घोषित 25 फीसदी की दर से कम है, हालांकि यह हमारी लगभग 10 फीसदी की पूर्व अपेक्षाओं से काफी अधिक है।

अगर बढ़ी हुई शुल्क दर बरकरार रही तो हमारा अनुमान है कि हमारी सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि में 0.2 फीसदी तक की कमी आएगी। अमेरिका भारत का सबसे बड़ा निर्यात केंद्र है और हम जीडीपी के 2.2 फीसदी बराबर उसे नियत करते हैं। कई उत्पाद श्रेणियों में अमेरिका को निर्यात भारत के वैश्विक निर्यात के 30 से 40 फीसदी तक है। यह बताता है कि अमेरिकी बाजार में प्रतिस्पर्धी बढ़त कितनी आवश्यक है।

निर्यात श्रृंखला के छोटे और मझोले उपक्रम खासतौर पर मुश्किल में हैं। ये कारोबार अक्सर सीमित कार्यशील पूंजी के साथ काम करते हैं और बहुत कम मार्जिन पर भी । ऐसे में इन्हें अतिरिक्त लागत वहन करने के लिए जूझना पड़ सकता है। इसका असर रोजगार खासकर कपड़ा एवं वस्त्र, रत्न एवं आभूषण आदि के क्षेत्र में पड़ेगा जहां छोटे और मझोले उपक्रमों की अहम भूमिका है। भारत समुद्री खाद्य उत्पाद क्षेत्र में भी अपनी प्रतिस्पर्धी बढ़त गंवा सकता है। इस क्षेत्र में उसने अमेरिका में अहम बाजार हिस्सेदारी तैयार की है। औषधि और इलेक्ट्रॉनिक्स

आदि पर जवाबी शुल्क नहीं लगाया गया है लेकिन बाद में धारा 232 के तहत क्षेत्रवार शुल्क लागू होने पर उन्हें अधिक दिक्कतों का सामना करना होगा।

भारत निकट भविष्य में किसी संभावित व्यापार बदलाव लाभ से भी वंचित रह जाएगा। दक्षिण पूर्वी एशियाई राष्ट्रों के संगठन (आसियान) की अधिकांश अर्थव्यवस्थाओं ने लगभग 20 फीसदी की शुल्क दर पर बातचीत निपटाई है, जिसका अर्थ है कि भारत का सापेक्ष टैरिफ लाभ उतना महत्त्वपूर्ण नहीं होगा, जितना पहले माना जा रहा था।

बहरहाल इसके चलते इस तथ्य की अनदेखी नहीं करनी चाहिए कि भारत वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला में दीर्घकालिक रूप से आकर्षक है। चीन प्लस वन की व्यापक रणनीति भारत के पक्ष में है। इसके पीछे शुल्क दर से इतर कई कारक हैं। हाल ही में इलेक्ट्रॉनिक्स तथा अन्य क्षेत्रों में जो निवेश हुआ है वह बताता है कि कंपनियां विविधता लाना चाहती हैं और इसके लिए टैरिफ के बजाय भारत की ढांचागत बढ़त वजह है। इलेक्ट्रॉनिक्स असेंबली, कपड़ा एवं परिधान तथा खिलौना आदि क्षेत्र बताते हैं कि वैश्विक मूल्य श्रृंखला से भारत का एकीकरण जारी रह सकता है।

भारत की नीतिगत रणनीति

कारोबारी चुनौतियों के प्रति भारत की नीतिगत प्रतिक्रिया बहुआयामी और साव- धानीपूर्वक नपी तुली होनी चाहिए। व्यापार के मोर्चे पर भारत को विशिष्ट मुद्दों पर लचीलापन दिखाते हुए बातचीत के प्रति अपने रणनीतिक दृष्टिकोण को बनाए रखना चाहिए। घरेलू राजनीतिक कारणों से कृषि और डेरी क्षेत्र संवेदनशील बने हुए हैं, लेकिन वाहन जैसे अन्य क्षेत्रों में या अमेरिकी खरीद बढ़ाकर समझौता करने की गुंजाइश है।

मध्यम अवधि में निर्यात विविधता और अहम हो जाएगी। हाल में ब्रिटेन के साथ हुआ मुक्त व्यापार समझौता और यूरोपीय संघ, न्यूजीलैंड तथा अन्य देशों के साथ मौजूदा वार्ता सही दिशा में उठाया गया कदम है। इन प्रयासों को गति देने की आवश्यकता है ताकि किसी एक बाजार पर निर्भरता कम की जा सके। यह हमारे लिए अवसर है कि हम ढांचागत सुधारों को गति दे सकें।

वातांओं को तेज करने के अलावा सरकार को प्रभावित निर्यातकों खासकर छोटे और मझोले उपक्रमों पर भी ध्यान देना चाहिए। इसके लिए ब्याज दर सब्सिडी और निर्यात प्रोत्साहन बढ़ाने पर विचार किया जा सकता है। बैंकिंग क्षेत्र भी इन क्षेत्रों को पर्याप्त कार्यशील पूंजी मुहैया कराकर मदद कर सकता है। मौद्रिक नीति की भी इस प्रभाव को कम करने में अहम भूमिका होगी। मुद्रा का अवमूल्यन अगर जारी रहा तो वह आयातित मुद्रास्फीति को बढ़ा सकता है। वित्त वर्ष 26 में मुद्रास्फीति के घटकर 2.8 फीसदी हो जाने की उम्मीद है जो रिजर्व बैंक के 3.7 फीसदी के अनुमान और 4 फीसदी के लक्ष्य से कम है। इसका अर्थ यह है कि रिजर्व बैंक का दरों में कटौती का चक्र समाप्त नहीं हुआ है। ऐसा उसके द्वारा अपने रुख को तटस्थ कर लेने के बावजूद है

लब्बोलुआब यह है कि कुल मिलाकर अमेरिकी शुल्क वृद्धि निकट भविष्य में चुनौतीपूर्ण है लेकिन देश की नीतिगत प्रतिक्रिया को अधिक रणनीतिक होना चाहिए। शतरंज की तरह व्यापार वार्ताओं में भी कई बार हमें लंबी अवधि की बेहतरी के लिए अल्पकाल में अस्थायी कमजोरी को स्वीकार करना पड़ता है।

जनसत्ता

Date: 05-08-25

शुल्क का सामना

संपादकीय

अमेरिका की ओर से भारत पर पच्चीस फीसद शुल्क लगाने की घोषणा ने न केवल भारतीय निर्यातकों की चिंता बढ़ा दी है, बल्कि इससे भारत और अमेरिका के बीच प्रस्तावित द्विपक्षीय व्यापार समझौते को लेकर भी अनिश्चितताएं पैदा हो गई हैं। स्वाभाविक है कि इससे दोनों देशों को होने वाले नफा-नुकसान को लेकर विभिन्न स्तर पर आकलन भी शुरू हो गया है। इसमें दोराय नहीं कि अमेरिका के इस फैसले के पीछे भू-राजनीतिक परिदृश्य से भारत पर दबाव बनाने की रणनीति भी शामिल है, लेकिन इस संभावना से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि इसका कुछ असर अमेरिका को खुद भी झेलना पड़ सकता है। सवाल यह है कि भारत इस स्थिति से किस तरह निपटेगा ? भारतीय निर्यातकों की चिंता भी वाजिब है, क्योंकि अमेरिकी शुल्क से भारत के निर्यात पर असर पड़ सकता है और अगर ऐसा हुआ तो उनका कारोबार प्रभावित होगा। यही वजह है कि वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री के साथ बैठक में निर्यातकों ने सरकार से वित्तीय सहायता और किफायती ऋण की मांग की है।

बैठक में निर्यातकों ने इस बात पर जोर दिया कि भारत में ऋण पर ब्याज दरें आठ से बारह फीसद या उससे भी अधिक होती हैं। जबकि प्रतिस्पर्धी देशों में ब्याज दर बहुत कम है। जैसे, चीन में केंद्रीय बैंक की दर 3.1 फीसद, मलेशिया में तीन, थाईलैंड में दो और वियतनाम में 4.5 फीसद है। साथ ही कहा गया कि अमेरिकी खरीदारों ने मांग को रद्द करना या रोककर रखना शुरू कर दिया है। ऐसे में अगर आने वाले दिनों में भारत के निर्यात कारोबार में बड़े स्तर पर गिरावट आई तो इस क्षेत्र में रोजगार के अवसर कम होने लगेंगे। यों सरकार ने अमेरिकी शुल्क से पैदा होने वाली संभावित दिक्कतों से निपटने की तैयारी शुरू कर दी है। वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री के साथ निर्यातकों की बैठक इन्हीं तैयारियों का हिस्सा है। कहा जा रहा है कि सरकार ने निर्यातकों से सुझाव मांगे हैं, जिन पर गंभीरता से विचार किया जाएगा। इसके अलावा केंद्र सरकार निर्यातकों को समर्थन देने के लिए राज्यों के साथ बातचीत करने पर भी विचार कर रही है।

माना जा रहा है कि अमेरिकी शुल्क का ज्यादा असर वस्त्र, रत्न एवं आभूषण, चमड़ा एवं जूते-चप्पल, रसायन और विद्युत एवं यांत्रिक मशीनरी उद्योग पर पड़ सकता है। भारत के चमड़ा और परिधान निर्यात में अमेरिका की हिस्सेदारी तीस फीसद से अधिक है। व्यापार विशेषज्ञों का मानना है कि अगर शुल्क की वजह से अमेरिका में भारतीय वस्तुओं की मांग घटती है, तो निर्यात कारोबारियों को ब्रिटेन और जापान जैसे नए बाजार तलाशने होंगे। ऐसी स्थिति में ब्रिटेन के साथ हुआ भारत का मुक्त व्यापार समझौता फायदेमंद साबित हो सकता है। वहीं, अमेरिकी शुल्क के प्रभाव का दूसरा पहलू यह है कि भारत-अमेरिका के बीच प्रस्तावित व्यापार समझौते को लेकर भी अनिश्चितता का माहौल पैदा हो गया है। अमेरिका पहले से ही इस समझौते के तहत भारतीय कृषि एवं डेयरी बाजार को खोलने की मांग पर अड़ा हुआ है। हालांकि, भारत स्पष्ट कर चुका है कि राष्ट्रहित से किसी तरह का समझौता नहीं किया जाएगा। इसे लेकर पांच दौर की वार्ता हो चुकी है और देखना होगा कि 25 अगस्त से भारत में छठे दौर की संभावित वार्ता में भारत का क्या रुख रहेगा जहां तक अमेरिकी शुल्क की बात है तो भारत के पास जवाबी शुल्क लगाने का विकल्प भी सुरक्षित है।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 05-08-25

इतिहास पर विवाद

अवधेश कुमार

एनसीईआरटी द्वारा पुस्तकों में किए गए कुछ बदलाव पर जिस तरह का बवंडर खड़ा किया गया है वह अनपेक्षित नहीं है। पहले भी जब तथ्यों और भारतीय दृष्टिकोण के साथ इतिहास, सामाजिक विज्ञान आदि के पुनर्मूल्यांकन के बाद पुस्तकें आई तो ऐसे ही हंगामा हुआ। पहले तथ्य देखें। एनसीईआरटी ने इतिहास में कुछ संशोधन किए हैं। अभी कक्षा 7 और 8 की पुस्तकों हमारे अतीत भाग और भारत और समकालीन विश्व भाग दो में मुख्य बदलाव मुगल और अकबर से संबंधित है। इसमें अकबर को अकबर महान नहीं कहा गया है।

आखिर इसमें और है क्या? कुछ उदाहरण देखिए | पृष्ठ 66 पर कहा गया कि अकबर की सहिष्णुता केवल उसकी सत्ता को स्थिर करने का साधन था| पृष्ठ 70 पर चित्तौड़ के युद्ध में 30,000 नागरिकों के नरसंहार का उल्लेख है | पृष्ठ 73 पर महाराणा प्रताप को 'हिंदवी स्वाभिमान' का प्रतीक बताया गया है। पृष्ठ 76 पर अकबर द्वारा

शुरू की गई 'दीन-ए- इलाही' को 'राजनीतिक नवाचार' बताया गया है, न कि धार्मिक समन्वय की संकल्पना क्या ये तथ्य गलत हैं? अकबर के अकबरनामा से लेकर अबुल फजल के 'आईने अकबरी' आदि के उद्धरणों से बताया गया है कि ये सारे तथ्य सही हैं। वैसे भी इन अध्यायों में अकबर के चरित्र को द्विपक्षीय बताया गया है। उसके क्रूर और सहिष्णु तथा कट्टर और उदार दोनों पक्षों को सामने रखा गया है। अकबर ने 'दीन ए इलाही' शुरू किया, लेकिन उसकी स्थिति क्या हुई? उसमें जजिया हटाने की घोषणा की, लेकिन क्या वह उसी स्तर पर नीचे लागू हुए तथ्य बताते हैं कि नहीं हुए?

वास्तव में नई पुस्तकों में बदलाव का उद्देश्य छात्रों को संतुलित तथ्य-आधारित, और भारत की चेतना के अनुकूल इतिहास देना है। पहले जिन धर्मों को समान दृष्टि से प्रस्तुत किया गया था, अब उनके ऐतिहासिक मतभेद और संघर्षो को लिखा गया है। देखा जाए तो इन बदलावों से छात्रों को विविध ऐतिहासिक पक्षों को समझने के साथ भारत क्या है इसका इतिहास क्या रहा है इन्हें भी जानने का अवसर मिलेगा। फिर समस्या कहां है? समस्या विकृत सोच में है। इतिहास इस आधार पर नहीं लिखा जाता कि किस समुदाय को क्या महसूस होगा बल्कि यह जो सत्य जैसा है उसे सामने लाने का विषय है। मूल विषय अकबर या कोई शासक नहीं इतिहास और भारत को देखने की दृष्टि का है। । मूल प्रश्न है कि हम महापुरुष किसे मानें, किसे महान कहें? कुछ अंग्रेज लेखकों ने 'द ग्रेट मुगल' शब्द प्रयोग किया और स्वतंत्रता के बाद सेक्युलरवाद के नाम पर इसी को साबित करने के लिए इतिहास गढ़ने का कारनामा हुआ जिनमें तथ्यों का गला घोंट देने का अपराध किया गया। यह केवल एक इतिहास का प्रश्न नहीं है, यह हमारी सांस्कृतिक चेतना, राष्ट्रबोध और बौद्धिक आत्मसम्मान का भी प्रश्न है। भारत पश्चिमी की तरह नेशन स्टेट का राष्ट्र नहीं है। भारत की आत्मा उसकी भूमि में नहीं, संस्कृति में बसती है। राष्ट्र की परिभाषा भूगोल से नहीं, बल्कि धर्म, दर्शन और परंपरा से होती है।

हिमालय से समुद्र तक विस्तारित भारत वर्ष युगों से एक सांस्कृतिक राष्ट्र रहा है। ऋग्वेद, महाभारत, रामायण, पुराण में भारत को एक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक भूखंड के रूप में देखा गया है। भारत अनेक जनपदों राज्यों और राजवंशों में विभाजित रहा हो, परंतु उसकी आत्मा संस्कृति, धर्म, भाषा, दर्शन और जीवनशैली के माध्यम से एक रही। शासक अलग-अलग रहे, पर देश की पहचान संस्कृति से रही । इतिहास का लेखन के दृष्टिकोण में यह समाहित नहीं है तो भारत का इतिहास नहीं हो सकता। तो भारत में हम उसे महान कहेंगे जो हमारे राष्ट्र के सांस्कृतिक एकता वाले सशक्त आधार चरित्र को सुदृढ़ कर उसे आगे बढ़ाने का वाहक बने। 8वीं शताब्दी से लेकर 18वीं शताब्दी तक भारत पर हुए इस्लामी आक्रमणों के प्रमुख उद्देश्य स्पष्ट थे। बेरहम आर्थिक लूट और सत्ता की प्राप्ति तथा धर्मांतरण और भारत का इस्लामीकरण यानी दारुल - हरब को दारुल इस्लाम बनाना। गजनी, गोरी, खिलजी, तुगलक, लोधी और मुगलों का मूल इतिहास इन पाशविकताओं और बर्बरताओं से भरा हुआ है। हमारी सनातन परंपरा में महान वही कहलाया जिसने धर्म और सत्य की रक्षा की, संस्कृति को संरक्षण दिया तथा जिसका स्वयं का जीवन त्याग, तपस्या और शुचिता का रहा है। ऋग्वेद से आज तक भारतीय आत्मा के रचनाकारों ने किन्हें महान बनाया उनकी एक श्रृंखला बनाएं तथा उसमें इस्लामी आक्रमणकारियों तथा यहां बस जाने वाले शासको को शामिल करके देखिए आपको निष्कर्ष मिल जाएगा।

वस्तुतः भारत का इतिहास केवल राजनीतिक सत्ता, युद्ध और शासकों की कहानियां नहीं है, बल्कि यह जीवित शाश्वत सभ्यता की हजारों वर्षों पुरानी सांस्कृतिक चेतना का साक्षी भी है। भारत एक ऐसा विचार रहा है जिसमें किसी पंथ या मजहब को सर्वोच्च मान कर राष्ट्र, समाज और व्यवस्था की कभी कल्पना नहीं की जा सकती। सांस्कृतिक चेतना वाले इस राष्ट्र में विविध विचारों को समान महत्व दिया गया है। जिसे हम भारत कहते हैं उसकी आत्मा क्या है? सांस्कृतिक चेतना जो सनातन है। आप वैदिक ऋचाओं से लेकर जिसे भक्ति आंदोलन कहा गया और उत्तर से दक्षिण पूर्व से पश्चिम इसी सांस्कृतिक एकता का वह विधि यानी विविध रूप दिखाई देगा। आदिगुरु शंकराचार्य ने चारों दिशाओं में मठ स्थापित किए, रामायण और महाभारत पूरे देश में एक समान श्रद्धा के ग्रंथ हैं। चारों दिशाओं के तीर्थ भारत की एकता के प्रतीक है।

अगर अकबर या किसी ने भी शासक के रूप में इन विचारों और परंपराओं को आगे बढ़ाने तथा भारत को भारत बनाए रखने के लिए अपना जीवन लगाए हों तो उसके ऐतिहासिक प्रमाण दिए जाने चाहिए। इतिहास सजाया नहीं जाता। विजय सत्य की होती है और इतिहास का पुर्नेखन इसी दिशा में है। हालांकि सच यही है कि जितना शोर मचाया जा रहा है उस स्तर पर आज तक इतिहास को दुरुस्त नहीं किया गया। 2014 के बाद यह संभव था। कुछ वर्षों की समय सीमा बनाकर आसानी से किया जा सकता था लेकिन जिनको दायित्व दिया गया वे स्वयं इस लॉबी से या तो भयभीत रहे या उनके पास दृष्टिकोण नहीं था। आज भी परीक्षाओं में उसी आधार पर प्रश्न पूछे जाते हैं और छात्रों को उत्तर देने को विवश होना पड़ता है।